IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 11, Issue 4, April 2024

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.802

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 4, April 2024 |

समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. भुवनेश कुमार परिहार

सह आचार्य-हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, सांभरलेक, जयपुर, राजस्थान

सार

हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में अनेक तरह से पर्यावरण की उपस्थिति देखने को मिलती है । मानवी जीवन का संचालन उसके पर्यावरण पर ही निर्भर करता है। मिट्टी, जल, वायु, आकाश, अग्नि से मिलकर ही हमारी देह का बनना संभव होता है और ये सभी तत्व प्रकृति और पर्यावरण के ही अंश हैं ।

परिचय

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। हमारे प्राचीन वेदो ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है।

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान मिला है। पर्यावरण चेतना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में रही है ,वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है[1,2,3]
प्रसिद्ध कवि रूपेश कन्नौजिया की पंक्तियां हैं-

प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है,
गुलाबी सुबह से माथा चूम कर हंसते हुए उठाती है,
गर्म दोपहर में ऊर्जा भर के दिन खुशहाल बनाती है,
रात की चादर में सितारे जड़कर मीठी नींद सुलाती है,
प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है,

आदिकालीन कवि विद्यापति की रचित पदावली प्रकृति वर्णन की दृष्टि से अद्वितीय है-

मौली रसाल मुकुल भेल ताब
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।

भक्तिकालीन कवियों में कबीर सूर तुलसी जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक- वर्णन हुआ है। तुलसी ने रामचरितमानस में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है -

तुलसी तरुवर विविध सुहाए
कहुं कहुं सिया कहुं लखन लगाएं।

रीतिकालीन कवियों में बिहारी पद्माकर देव सेनापति ने प्रकृति में सौंदर्य को देखा परखा है बिहारी का एक दोहा देखने योग्य है-

चुवत स्वेद मकरंद कन
तरु तरु तरु विरमाय
आवत दक्षिण देश ते

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 4, April 2024 |

थक्यों बटोही बाय।

आधुनिक काल में प्रकृति के सौंदर्य का उपादान क्रूर दृष्टि का शिकार होना प्रारंभ हो जाता है मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में चंद्र ज्योत्सना में रात्रि कालीन बेला की प्राकृतिक छटा का मुग्ध कारीवर्णन है-

चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है
अवनि और अंबर तल में

छायावादी काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कट रूप दिखाई देता है। प्रसाद पंत निराला महादेवी वर्मा में पर्यावरण चेतना यत्र तत्र पाई जाती है। पंत को तो प्रकृति का सुकुमार कवि भी कहा गया है पंत की यह पंक्तियां देखने योग्य है-

छोड़ दुरुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन

प्रसाद की कामायनी का पहला ही पद पर्यावरण का उत्कृष्ट उदाहरण है-

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
एकबैठ शिला की शीतल छांह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह
प्रसाद ने प्रकृति को ही सौंदर्य और सौंदर्य को ही प्रकृति माना है।

काशीनाथ सिंह की कहानी जंगल जातकम पर्यावरण को बचाने को लेकर अच्छी कोशिश कही जा सकती है। जिस परिवेश में बैठकर लेखक ने कहानी की रचना की है वह चिपको आंदोलन के आसपास का समय है। लेखक ने समय की मांग को संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है जंगल का मानवीकरण करते हुए लेखक ने बरगद बांस पीपल सभी वृक्षों की भूमिका को सही दिशा दी है

विचार-विमर्श

समकालीन कवि एवं लेखक अपनी रचनाओं द्वारा हमें जागरूक कर रहे हैं, हमें बता रहे हैं कि पर्यावरण को असंतुलित कर हम विकास की ओर उन्मुख नहीं हो सकते । प्रोद्योगिकी के विकास से प्रकृति असंतुलित हो गयी है । मानव जीवन अपने चारों ओर के पंचभूत तत्वों पर आश्रित है । मिट्टी, जल, अग्नि, गगन और वायु इन पांच तत्वों का अस्तित्व में रहना नितांत आवश्यक है पर आज के दुस्समय में मानव अपने भौतिकता और विलासिता की चकाचौंध में स्वार्थी होकर प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन कर रहा है । इन सभी के बढ़ते संकट पर समकालीन साहित्यकारों ने अपनी अपनी दृष्टि से अपने रचनाओं में वर्णन किया है । समकालीन दौर में कविता और कहानियों में प्रकृति का मात्र चित्रण नहीं हुआ बल्कि प्रकृति स्वयं उपस्थित है ।[4,5,6]

हमारा शरीर पंचतत्व -पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश से बना है । यह पंचतत्व पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं । हमारी भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से पर्यावरण की शुद्धता पर बहुत विचार किया जा रहा है । वेद और उपनिषद भी पर्यावरण की बात करते हैं । प्रकृति में वायु, जल, मिट्टी, पेड़- पौधों, जीव जंतुओं का जो संतुलन विद्यमान है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं । पर्यावरण दो शब्दों के मेल से बना हैं -परि+आवरण। जिसमे परि का अर्थ है चारों तरफ तथा आवरण का अर्थ है ढके हुए । अर्थात हमारे आसपास जो कुछ भी हमें दिखाई देता है वह सब कुछ हमारे पर्यावरण है और इस पर्यावरण के बारे में जानना, समझना, इसके लिए क्या उचित है क्या अनुचित इसका ज्ञान रखना ये सभी बातें पर्यावरणीय जागरूकता का विषय है। इन सब के अभाव में हम अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते । इस तरह हमारा जीवन पर्यावरण पर आश्रित है । प्राचीन काल से ही साहित्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण, प्राकृतिक दृश्य का चित्रण दिखाया गया है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति का भिन्न-भिन्न रूप साहित्य में दृष्टिगोचर

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 4, April 2024 |

होता है । विद्यापति की पदावली में प्रकृति वर्णन है तो संत साहित्य के प्रवर्तक कबीर तथा जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक वर्णन हुआ है । तुलसी की रामचरितमानस का अशोक वाटिका हो या चित्रकूट प्रसंग सब में प्रकृति की महिमा बताई गई है । तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में राम सीता को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है जो वृक्ष के महत्व को दर्शाता है इस संबंध में एक पंक्ति है-"तुलसी तरुवर विविध सुहाए, कहुं,कहुं सीया कहुं लखन लगाएं ।"आधुनिककाल में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'कुटज'में लिखा है- "यह धरती मेरी माता है और मै इसका पुत्र हूँ । इसीलिए मै सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ ।"[1] इस तरह आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक में पर्यावरण दृश्य हमें कविता और कहानियों में दिखाई पड़ते हैं। समकालीन दौर में आए पर्यावरणीय विचार से यह अलग है; अलग इस मायने में है कि आधुनिक काल तक जो पर्यावरण के संबंध में हमारे साहित्य में लिखा गया वह पर्यावरण-विमर्श के तहत नहीं लिखा गया वहाँ मात्र उद्दीपन या आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है । समकालीन दौर में जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसमें पर्यावरण विमर्श सम्मिलित है। पर्यावरण में आए असंतुलन ने पर्यावरण -विमर्श को जन्म दिया ऐसा कहना गलत नहीं होगा ।

समकालीन दौर में पर्यावरण विमर्श एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में हमारे समक्ष आता है। समकालीन भारत में उत्तर आधुनिकता के साथ कई प्रकार के विमर्श जन्म लेते हैं जैसे-दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, पर्यावरण विमर्श, दिव्यांग विमर्श इत्यादि। पर्यावरण के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए ही हम प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाते हैं। वन विभाग के सभी पदाधिकारी, कर्मचारी सहित शिक्षण संस्थाओं तथा अन्य विभिन्न संस्थाएं इस दिवस को हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। कुछ लोग इस दिन पर्यावरण-दिवस के सुअवसर पर पौधारोपण का कार्य करते हैं। ये सभी कार्य हमारे पर्यावरण को सुरक्षित व संरक्षित करने में किया गया एक कार्य है। यह प्रकृति के प्रति हमारे दायित्व को बताता है।

इस संकट काल मे हिन्दी के अनेक कवियों ने चिंता व्यक्त की है । आज के बढ़ते तकनीकी एवं औद्योगीकरण के जीवन में त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, अरुण कमल, ज्ञानेंद्रपति, अशोक पजपेयी, शिशुपाल सिंह जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में इस तथ्य को बखूबी उभारने की कोशिश की है । ये कवि पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को एक गंभीर विषय के रूप में अपनाकर, आज की ज्वलंत समस्या पर्यावरण –प्रदूषण का चित्रण अपनी रचनाओं मे करके हमारे बीच जागरूकता फैलाते हैं । हिन्दी के वरिष्ठ कवि ज्ञानेंद्रपति ने भी अपनी अनेक कविताओं में पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते आतंक का चित्रण किया है। इनकी कविता विशेष अर्थ में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विमर्श की कविता है। पर्यावरण विमर्श से सम्बन्धित उनकी कई कविताएँ हैं। "गंगास्नान", "गंगातट" काव्य संग्रह की एक कविता है । इसमें कवि ने एक बूढ़ी, जर्जर स्त्री की गंगास्नान की आखिरी इच्छा को चित्रित किया है । इस जर्जर स्त्री के मन में गंगा आस्था की ज्योति है । लेकिन कवि का मन मानने को तैयार नहीं है क्योंकि आज गंगा मलिन है।

"गंगा मे स्नान कर रही
वह बूढ़ी मैया…
अपने प्राणों तक को प्रक्षालित कर रही है, पवित्र कर रही है
महाप्रस्थान-प्रस्तुत, डगमग पांवों वाली वह बूढ़ी मैया
तुम क्या जानों, क्योंकि तुम्हारे लिए नहीं बची है कोई पवित्र नदी
तुम्हारी सारी नदियाँ अपवित्र हो गई हैं-विषाक्त
तुम्हारे हत्पिंड की गंगोत्री सूख ही गई है
पीछे और पीछे खिसकती,आख़िरकार"[2]

इसके अलावा पर्यावरण विमर्श के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण कविता है –"नदी और साबुन" जो "गंगातट" काव्य संग्रह की ही महत्वपूर्ण कविता है। नादियों को प्रदूषित होता देख ज्ञानेंद्रपति ने इस कविता में नदी को लेकर चिंता जताई है । वे इस कविता में नदी से पूछते हुए कहते हैं-

"नदी!
तू इतनी दुबली क्यों है?
और मैली कुचली …
मरी हुई इच्छाओं की तरह मछलियाँ क्यों उतराई हैं?
तुम्हारे दुर्दिन के दुर्जल में ,
किसने तुम्हारा नीर हरा,[7,8,9]
कलकल में कलुष भरा।
बाघों के जुठारने से तो
कभी दूषित नहीं हुआ तुम्हारा जल …

आह! लेकिन
स्वार्थी कारखानों का तेजी पेशाब झेलते
बैगनी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा
हिमालय के होते भी तुम्हारे सिरहाने
हथेली भर की एक साबुन की टिकिया से
हार गई तुम युद्ध "[3]

कवि ने इस कविता के माध्यम से दिखाया है कि नदियों की स्वच्छता एवं पवित्रता नष्ट हो गई है । नदी जो पहले स्वच्छ हुआ करती थी अब वह मैली कुचैली एवं क्षीण हो गई है। नदी के बुरे दिनों के गंदे जल में मरी मछलियाँ उतर रही है। कवि की रुष्टता भी इस कविता मे दिखाई देती है । वह नाराज होकर पूछता है कि किसने नदी के पवित्र जल को मलिन किया? बाघों के पानी पीने से नदी का जल कभी दूषित नहीं हुआ। कछुओं के दृढ़ पीठों से उलीचा जाने पर भी नदी का जल कम नहीं हुआ। स्वार्थी लोगों ने अपने क्षुद्र स्वार्थों एवं आर्थिक दृष्टीकोण से कारखानों की भरमार कर दी है । इन कारखानों से रिसते तेजाब से नदी का शुभ्र जल अपनी शुभ्रता खोकर बैंगनी हो गया है। हिमालय नदी के सिरहाने में है। वह पर्वताधिराज हिमालय की पुत्री है। किन्तु वह आज एक साबुन के टिकिया से अपने अस्तित्व का युद्ध हारने में अभिशप्त है। पोलिथिन जिसका प्रयोग हम आज सभी प्रचुर मात्रा में करते हैं चाहें बाजार से सब्जियां लानी हो या फिर कोई अन्य घरेलू सामग्री । इसके प्रयोग ने जल, वायु और भूमि सभीको दूषित कर दिया है। जल, वायु और भूमि के दूषित होने से अनेक रोगों तथा विकारों का जन्म होता है । निरंतर बढ़ते जा रहे पोलिथिन का उपयोग मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हो रहा है । पोलिथिन के बेहद उपयोग व उनसे होने वाली समस्याओं को लीलाधर मंडलोई ने 'पोलिथिन की थैलियाँ' शीर्षक कविता मे कवि ने पोलिथिन से उत्पन्न भयावह त्रासदी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इस समस्या का चित्रण कुछ इस तरह किया है –

"करोड़ों या अरबो
कितनी हो सकती हैं
पालिथिन की थैलियाँ
कितनी नदियों का दम घुट सकता है
इन थैलियों में
पालिथिन ! पालिथिन !
तंग हूँ मैं इस पालिथिन से ।"[4]

कथा साहित्य की बात करें तो मेहता नगेंद्र सिंह समकालीन हिन्दी कथा के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक हैं। वे समकालीन हिन्दी कविता के एक ऐसे महत्वपूर्ण कवि हैं जिन्होंने हिन्दी कविता को नयी दिशा एवं नूतन दृष्टि प्रदान की है । उनकी कहानियां अंतर्मन को कुरेदने को विवश करती हैं । पर्यावरण चेतना और जागरूकता से संबंधित इनकी एक लघु कथा है-'वृक्ष ने कहा ' जिसमें यह बताया गया है कि एक बरगद के वृक्ष ने किस प्रकार लोगों को यह सीख दी कि हरे-भरे कोमल वृक्षों को काटा जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है चाहे उसकी लकड़ियां पूजा-अर्चना के कार्य में ही क्यों ना लाई गई हो। बंजर जमीन को उपजाऊ बनाकर किस प्रकार हम उसमें वृक्षारोपण कर अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छी कर सकते हैं तथा दूसरे की भी मदद कर सकते हैं इसको भी इस लघु कथा में बताया गया है। परोपकार की भावना के साथ एक वृक्ष किस प्रकार दधिचि वृक्ष बन गया इसका विवेचन भी एक उनकी लघु कहानी जिसका शीर्षक है 'वृक्ष-दधीचि' में किया गया है। जिसमें दिखाया गया है कि कैसे एक बालक रोजाना एक विशालकाय वृक्ष के नीचे अपने सहपाठियों के साथ खेलने के लिए आता है, अचानक एक दिन उस बालक का आना, खेलना बंद हो गया। वृक्ष को उसका इंतजार था वह चिंतित रहने लगा। काफी दिनों के बाद वह बच्चा वृक्ष के पास आया वृक्ष कारण जानना चाह रहा था वह बच्चा भी उसकी भाषा समझ कर कहा-"मैं बीमार था मेरे पिता भी बीमार हैं बैलून खरीदने के लिए मुझे पैसा चाहिए था। उसकी बात को सुनकर वृक्ष ने कहा-"प्यारे बच्चे मैं पैसा तो नहीं दे सकता पर अपना फूल फल अवश्य दे सकता हूं। तुम उन्हें बेचकर पैसा पा सकते हो। इतना कह कर वृक्ष ने अपना सिर हिला दिया उसके फूल फल धरती पर बिछ गए वह बच्चा उस वृक्ष के फूल फल लेकर चला गया फिर उसका आना बंद हो गया। इसी बीच बच्चा बड़ा हो गया, तरुण हो गया अब उसका विवाह भी हो गया था कुछ सालों बाद वह पुनः उसी वृक्ष के पास आया और बोला-"हे वृक्ष बाबा मुझे अपने परिवार के लिए एक घर चाहिए।"वृक्ष ने प्यार जताते हुए कहा-"मैं तुझे घर तो नहीं दे सकता यदि चाहो तो मेरी शाखाएं काट कर अपना घर बना लो।" बालक उसकी शाखाएं लेकर चला गया उससे अपना घर बनवाया और घर बनाने के कुछ दिन बाद वह पुनः वृक्ष के पास आया और बोला-"बृक्ष बाबा मुझे व्यापार के लिए एक नाव चाहिए।" इस पर वृक्ष बोला-" मेरे धड़ के ऊपर वाला तना ले लो नाव बन जाएगी।" उस जवान नवयुवक ने वैसा ही किया। फिर वह नवयुवक धीरे धीरे प्रौढ़ हो गया। एक दिन वह अपनी प्रौढ़ावस्था में वृक्ष के पास आया शायद धन्यवाद देने के लिए। अबकी बार उसके कुछ मांगने के पहले ही वृक्ष अपनी कॉपती स्वर में बोला-"अब तो मै ठूंठ बन गया हूं। मेरे पास देने को कुछ बचा नहीं है यदि चाहो तो यह ठूंठ भी ले जा सकते हो। "इस पर वह लालची प्रौढ़ घर एवं व्यापार के लिए उस ठूंठ पेड़ को भी लेता गया।"[5] इस तरह

इस कथा के माध्यम से हमें वृक्ष की परोपकारिता के बारे में बताया गया है कि किस तरह से वृक्ष निस्वार्थ व नि:शुल्क, परार्थ की भावना से हमें अपना सबकुछ समर्पित कर देते हैं। शिर्षक की दृष्टि से इस कथा को 'वृक्ष दधिचि 'नाम उचित ही दिया गया है। जिस प्रकार महर्षि दधीचि ने बिना अपनी परवाह के देवताओं को अपनी हड्डी समर्पित कर दी थी उसी प्रकार वृक्ष भी हमें अपना सब कुछ दे देते हैं। हमारे लिए ऑक्सीजन (जीवनदायिनी हवा) से लेकर लकड़ियां, घर, फल फूल सभी। वास्तव में यह दधीचि की तरह महादानी होते हैं।

मेहता नरेंद्र सिंह ने अपने लघु कथाओं में वृक्ष को कहीं दधीचि के समान महादानी बताया है तो कहीं किसी व्यक्ति के सुखी संपन्न होने में वृक्ष कितना महत्व रखता है इसका विवेचन किया है कहीं पानी की महत्ता, उसके विस्तार पर चर्चा है तो कहीं पानी के बढ़ते संकट पर, तो कहीं स्वयं हमारी धरती मां पत्र लिखकर सामान्य जन से अपनी पीड़ा को बताती हैं एक पत्र में धरती माँ कहती हैं -"तुम लोग खुश हो या नही, चैन से हो या बेचैन हो, पता नहीं। मैं तो वैश्विक ताप से तप रही हूं। असह्य वेदना से तड़प रही हूं। यह कह कर तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट देने की मेरी मनसा नहीं है। मैं माँ हूं, अपने बच्चों को कष्ट नहीं दे सकती। कष्ट देना तो दूर, मैं तुम्हें कष्ट में देख भी नहीं सकती। तुम सभी ने मुझे अपने अपने ढंग से कष्ट दिए, तपिश दी। मुझसे मेरी हरीतिमा छीनी। मेरे सुहाग -श्रींगार को नष्ट किया।"[6]इसी तरह पानी की प्रकृति को एक लघु कथा पानी में कुछ इस तरह वर्णित किया गया है-" पानी हूं। प्रकृति प्रदत्त, अमृत धन, जीवन तत्व। गरीब-अमीर एवं अन्य सभी जीवधारियों के लिए बना हूं, नि:शुल्क वितरण की प्राकृतिक सामग्री। यही कारण है कि धरती पर जीवधारियों के उद्भव के पूर्व सृष्टिकर्ता के द्वारा मेरा सृजन किया गया , ताकि प्रत्येक जीवधारी मुझे ग्रहण कर अपने को गतिशील बनाते हुए विकसित करता रहे। तरल हूं, रंगहीन हूं एवं गंधहीन हूं। धरती की चट्टानी कोख से प्रस्फुटित होकर झरनों एवं नदियों के माध्यम से आप तक पहुंचता रहा हूं। आकाश से भी बरसता रहा हूं धरती पर लगभग तीन- चौथाई भाग में आच्छादित हूं। कूप, तालाब और जलाशय में संग्रहीत हूं। सागर मेरा सबसे बड़ा संग्रहालय है। परन्तु, वहां खारा हूं। सिर्फ समुद्र और बादल बनने के काम आता हूं।"[7] समकालीन दौर का पर्यावरण साहित्य बताता है कि किस प्रकार प्रकृति के अतीत गाथा गौरवमई रही और धीरे-धीरे नील गगन, मलयज पवन, पावन निर्मल जल और हरियाली से युक्त प्रकृति किस प्रकार मानवी अत्याचार से क्षत-विक्षत हो गयी। कुल्हाड़ियों के भय से जंगल कराहने लगा। हमारी अन्नपूर्णा मिट्टी जहरीली हो गई। जैव विविधता चरमरा गयी; देखते-देखते सुंदर श्रृंगारित पृथवी विधवा हो गई।

पर्यावरण के प्रति हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम विकास के हर कदम पर पर्यावरण की सुरक्षा का दाइत्व भी उठाएं। प्रदूषण को रोकने का हमें एक अटूट संकल्प करना होगा ।समग्रत: कहा जा सकता है कि समकालीन जीवन की सच्चाइयों को संवेदना के स्तर पर उजागर करने की सार्थक कोशिश हुई है जिसमें पर्यावरण जागरूकता का एक प्रमुख स्थान है । पर्यावरण पर विमर्श (बात-चित)ने यह विचार दिया है कि हमारी वर्तमान पीढ़ी और हमारी आने वाली पीढ़ी को यह पता चले कि नदी के सौन्दर्य को किस प्रकार देखना है, पेड़ों के बीच चलती मंद हवाओं की आहटों को हम उसके संगीत को किस प्रकार सुने, पक्षियों की कलरव को किस प्रकार से सुने इत्यादि इत्यादि। समकालीन दौर के साहित्य में पर्यावरण के बारे में जागरूकता काफी बढ़ी है-विशेषकर भारत जैसे आबादी बहुल देश के लिए जहां कृषि और उद्योग के कारण धरती पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है और इस दबाव के दुष्प्रभाव खतरनाक होते हैं ऐसी स्थिति में पर्यावरण के मुद्दे को गंभीरता से लेने की जरूरत है ताकि आने वाली पीढ़ी के लिए हम अपने इस सबसे सुंदर ग्रह पृथ्वी को सुरक्षित रख सके।

परिणाम

प्रकृति का संकट में आना हमारे अस्तित्व के लिए खतरनाक है। हमने गहरी नींद से जगने में बहुत देर कर दी है। हमने अपने कर्मों से बहुत कुछ बर्बाद कर लिया है और अब जो बचा है, उसके प्रति हम अगर सचेत न हुए तो भावी पीढ़ी के भविष्य को हम अंधकार में ढ़केल के ही दम लेंगे। यही कारण है कि आज पूरे विश्व में पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर विमर्श की आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'डायलेक्टिक्स ऑव नेचर' पुस्तक में प्रकृति से छेड़खानी के दुष्परिणाम बताते हुए *फ्रेडरिक एंगेल्स* कहते हैं – *प्रकृति पर मनुष्य की विजय को लेकर ज्यादा खुश होने की जरूरत नहीं, क्योंकि ऐसी हर जीत हमसे अपना बदला लेती है। पहली बार तो हमें वही परिणाम मिलता है जो हमने चाहा था, लेकिन दूसरी और तीसरी दफा इसके अप्रत्याशित प्रभाव दिखाई पड़ते हैं जो पहली बार के प्रत्याशित प्रभाव का प्रायः निषेध कर देते हैं।*

भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का बहुत अधिक महत्व रहा है। ऋषि मुनियों का आश्रम वनों में ही होता था। मानव, वन्य जीव, प्रकृति के बीच पारस्परिक सम्बंध हुआ करता था। वेदों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण को महत्व दिया गया है। हमारी संस्कृति में प्रकृति हमेशा से पूजनीय रही है। *हजारी प्रसाद द्विवेदी* ने अपने निबंध 'कुटज' में लिखा है –"*यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ*" (द्विवेदी 32) अग्नि, नदी, वृक्ष, सूर्य, पशु-पक्षी सारे पूजनीय रहे हैं। यूरोप की तुलना में भारतीय संस्कृति हमेशा प्रकृति से सामंजस्य बैठाती आई है, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रांति, पूँजीवादी विकास, वैज्ञानिक उन्नति, विश्व युद्ध, शीत युद्ध, ओजोन क्षरण, परमाणु परीक्षण, वैश्वीकरण आदि ने प्रकृति के साथ हमारे रिश्तों को नष्ट कर दिया है। मानव जाति की एकपक्षीय विकास ने प्रकृति को बहुत नुकसान

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 4, April 2024 |

पहुँचाया है। आज हमारे चारों तरफ महामारी फैली हुई है, न साँस लेने के लिए शुद्ध वायु, न पीने के लिए शुद्ध जल मिल पा रहा है, ओजोन होल लगातार फैल रहा है, ग्लेशियर पिघल रहा है, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है, खाद्य वस्तुएँ विषाणु युक्त हो गई हैं, हमारे लिए पर्यावरण को बचाने की बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। यही पर्यावरण विमर्श की आधारभूमि है।

बीसवीं सदी में जब से वैज्ञानिक प्रगति हुई है, प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग बढ़ा है। जनसंख्या वृद्धि, जंगलों की कटाई, प्रोद्योगिकी से फैलते प्रदूषण ने समस्त मानव जाति के स्वास्थ को संकट में डाल दिया है। हरीश अग्रवाल का कहना है – जब से ओजोन पट्टी के ह्रास के बारे में पता चला है और अविलम्ब खतरे की घंटी बजी है, तब से विश्व की सरकारें हरकत में आ गई हैं। लोगों के सामने त्वचा कैंसर, फसलों की हानि, मोतियाबिन्द बढ़ने जैसे खतरे मंडराने लगे हैं। (अग्रवाल)

आज के रचनाकारों द्वारा हिन्दी साहित्य के माध्यम से प्रकृति से तादात्मय स्थापित कर प्राकृतिक विध्वंस को रोकने और प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करने की प्रेरणा देते आ रहे हैं। हिन्दी कविता की ही राह पर समकालीन कहानीकारों ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से पर्यावरणीय चिंता के साथ–साथ चेतना भी जगाने का काम कर रहे हैं।

नदियों पर बड़े-बड़े बाँधों के निर्माण ने नदियों की गति रोक दी है, जहाँ विकास के लिए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण आवश्यक है, वहीं इसके कई दुष्परिणाम देखे जा सकते हैं। जिस देश में नदी को ईश्वर मान कर पूजा जाता है, उसी देश में नदी की ऐसी दुर्गति हो रही है। कारखानों से लेकर घरों तक की सारी वर्जित चीजें नदी में ही फेंकी जाती है। बड़े- बड़े शहरों के कचरों से भरे नाले के मुहाने नदी पर ही जाकर खुलते हैं। एस. हारनोट की कहानी 'एक नदी तड़पती है' में विकास के नाम पर बाँधों के निर्माण एवं उससे लोगों के विस्थापन के साथ ही साथ एक नदी के तड़प कर मरने की व्यथा दिखाई गई है। किस प्रकार कम्पनी के बड़े बाबुओं और नेताओं ने आधुनिक यंत्रों के साथ नदी पर बेरहम आक्रमण शुरू कर दिया और नदी तड़प- तड़प कर मरने लगी। कहानी में लेखक लिखते हैं- *नदी धीरे- धीरे कई मीलो तक घाटियों में जैसे स्थिर व जड़ हो गई थी। उसका स्वरुप किसी भयंकर कोबरे जैसा दिखाई देता था मानो किसी ने उसकी हत्या करके मीलों लम्बी घाटी में फेंक दिया हो। अब न पहले जैसा बहते पानी का नदी- शोर था न ही कोई हलचल। (हारनोट 69)*

कहानी में सतलज नदी पर बाँध बनाने के लिए लोगों की जमीनें जबरदस्ती खरीदी जा रही थी। गाँव के गाँव विस्थापित कर दिया गया था। सुमन को अब नदी की मीठी आवाज सुनाई नहीं देती। वह देखता है कि नदी किस प्रकार घुट- घुट कर मर रही है। बाँध के वजह से नदी के स्थान पर बहुत बड़ी झील बन गई है। वहाँ कई गाँव समा चुके थे। कहानी में लेखक दिखाते हैं- नदी का सौदा हो गया था। उसका पानी बूँद- बूँद बिक गया था। उसके बहाव, उसकी निरन्तरता और उसके निर्मल जल से सनी लहरों पर कम्पनी का कब्जा हो गया था। न जाने कितनी पीढ़ियों से अपनी- अपनी जमीन पर रचे – बसे लोग, उनके घर- आँगन, बाहर – भीतर स्थापित देवताओं की छोटी-छोटी देहरियाँ, गौशालाएँ, उनकी कच्ची भीतों में सारी पशुओं की रम्भाहटें देखते ही देखते वहाँ दफन हो गई थी (हारनोट 76)

नदी का एकालाप दादी को आहत एवं परेशान करता था। दादी के लिए नदी के मर जाने की व्यथा, उसके विस्थापन से अधिक था। आज पहाड़ों एवं नदियों को हथियाने के लिए कम्पनी वालों के बीच होड़ मची है। कहानी में दादी को लगता है कि नदी उनसे अनुनय कर रही है कि उसे अमानुषिक कैद से आजाद करवा दें। दादी कहती है- कोई सुरक्षित नहीं है.... न यमुना, कावेरी, कृष्णा न गंगा, गोदावरी,गोमती और ताप्ती। न कारतोया, कोसी, चन्द्राभागा, स्पिति और न चंबल, चिनाव, झेलम और ब्रह्मपुत्री। महानदी, शिप्रा, नर्मदा और दामोदर भी कहां जीवित रही है। वध कर दिए गए है सभी के। सरयु- सिंधु और सोन सभी घुट- घुट कर मर रही है। तड़प रही है। गायब कर दी गई है। (हारनोट 87)

नदियों पर बाँध बनने से जिस प्रकार नदियों का अस्तित्व संकट में आ गया है, पर्यावरण पर इसका गहरा प्रभाव पड़ रहा है। प्रदीप जिलवाने की कहानी 'भ्रम के बाहर' में भी लेखक ने जलपरी के माध्यम से पर्यावरणीय संकट एवं नदियों के विनाश की पीड़ा को व्यक्त किया है। जिस नदी में साल भर पानी रहता था, बाँध की वजह से अब वह बरसाती नदी बन चुकी है। नदियों पर कारखानों के रासायनिक गंदगी मिलने से नदी दुषित हो गई है। कहानी में जलपरी अपनी व्यथा सुनाते हुए कहती है- *कल घूमते– घूमते नदी से आगे तक निकल गई थी, तो वहाँ पानी इतना विषैला था कि मेरी सांसे लगभग बंद हो गई थी। मैं तत्काल पलट कर भाग आई। थोड़ी दूर वापस आई तो कुछ मछलियों ने बताया कि उधर आगे जाकर बहुत सी फैक्टरियो का विषैला रसायन और अपशिष्ट नदी में सीधे जाकर मिलता है, जिससे उस तरह की सारी मछलियाँ पानी में हर साल मर जाती है। (जिलवाने 236)*

विकास की अंधी दौड में इंसान पूरी धरती को अपने तरीके से बनाने, बिगाड़ने या संवारने में लगा हुआ है। इंसान यह भूल चुका है इस धरती पर वह अकेला नहीं है। सृष्टि पर जितना अधिकार इंसानों का है उतना ही अन्य जीवों का भी। इस बात को समझाते हुए कहानी में जलपरी कहती है- *विवेक! मनुष्य को यह समझने की सख्त आवश्यकता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए या उसी के होने या न होने से नहीं है। यह धरती चींटी और चिड़िया की भी उतनी ही है, जितनी मनुष्य की है। यह धरती बाघ, चीते, हिरण, हाथी, खरगोश की भी है। पेड़ों की भी है, पेड़ पर रहने वाली कीड़ों की भी है। (जिलवाने 236)*

आज शहर की नदियाँ नालों में परिवर्तित हो चुकी है। नदी के मरने, उसके तड़पने की आवाज इंसान सुन नहीं रहा है। कहानी में विवेक अपने बचपन की नदी तलाश करता है, जलपरी की तलाश करता है, किन्तु उसे कोई नहीं मिलता। वह सोचता है शायद नदी के मरते ही जलपरी भी मर गई होगी। नदी की ऐसी दशा मनुष्य के द्वारा फैलाए गए प्रदूषण की वजह से है।

जल, जंगल और जमीन पर जबसे कम्पनियों का अधिकार हुआ है, जल, जंगल और जमीन पर आधारित करोड़ों लोगों को अपना व्यवसाय, अपने स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ रहा है। जल, जंगल और जमीन पर कम्पनीवालों के अधिकार होते ही पर्यावरण के विनाश की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। जयश्री राय की कहानी 'खारा पानी' गोवा के समुद्री जीवन पर आधारित उन मछुआरों की कहानी है जिसके समुद्र पर अब कम्पनी वालों का अधिकार हो गया है। समुद्री मछली पर जीवन यापन करने वाले मछुआरों को विस्थापित होना पड़ रहा है। साथ ही बड़े- बड़े जहाजों के कचरे और उससे रीतते तेल की वजह से समुद्र का जल दुषित हो रहा है। समुद्री इको सिस्टम नष्ट हो रहा है। लेखिका यह दिखाती है कि समुद्र किनारे पाँच सितारा होटल बन रहा है। कंक्रीट के जंगल उभर रहे हैं, इसके लिए तटों पर बसे सैकड़ों वर्ष पुराने गाँवों को उजाड़ा जा रहा है। उन लोगों से उनकी सभ्यता, संस्कृति, आजीविका सभी छीना जा रहा है। सैलानियों के द्वारा फैलाये गए प्रदूषण से समुद्री जीव मर रहे हैं। कहानी में रामा कहता है- *कुदरत ने हमें जो दिया था, हम उसी में संतुष्ट थे। सर पर आकाश था, नीचे धरती का बिछौना..... अपने जल, जंगल, जमीन से हमें सब कुछ मिल जाता था, दो वक्त की रोटी, नींद और सुकून.... मगर अब तो सब छीन गया। न गरीबों के सर पर आकाश रहा, न पाँव के नीचे जमीन...... आजादी, उन्नति, आधुनिकता के नाम पर सब झपट ले गए।*

समुद्र पर अधिकार के लिए सरकार द्वारा नए–नए कानून बनाये जा रहे हैं। स्थानीय लोगों को विस्थापित किया जा रहा है। दया जैसे कई मछुआरों की रोजी – रोटी छीनी जा रही है। तेल के कारोबार से समुद्र प्रदूषित हो रहा है। मछलियाँ मर रही है। लेखिका दिखाती है- सात दिनों से दरिया पानी लिसरा पड़ा है – काले-काले तेल के चकत्तों से भरा हुआ.......कहीं दूर बीच समंदर में तेल का जहाज डूबा है। हजारों लीटर तेल हर क्षण पानी में रिस रहा है, लहरों पर तैर कर किनारे तक पहुँच रहा है, जल के जीव मर रहे हैं।

बड़े–बड़े होटल बनाने के लिए पहाड़ों को बम से उड़ाया जा रहा है। समुद्र में कचरा भर रहा है। प्रकृति में हो रहे ऐसे विनाश को देख दया की पत्नी रो पड़ती है। वह देखती है कि किस प्रकार पहाड़ नंगा खड़ा है। पूरे पहाड़ को दैत्याकार मशीने लील रही है। पहाड़ को साफ कर बड़ी – बड़ी कॉलोनियाँ बनाई जाएंगी। बड़े – बड़े बंगले बनेंगे। कहानी में दया इसका विरोध करता है। वह कम्पनी वालों के खिलाफ आन्दोलन करता है। धरने पर बैठता है, जुलूस निकालता है। अंत में अपने गाँव, अपने दरियाँ को नष्ट होते देख वह चिपको आन्दोलन की तरह समुद्र से चिपक जाता है। दूसरे दिन उसकी रक्त-रंजित देह जाल से लिपटी मिलती है। किसी विशाल जहाज ने उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए थे।

विकास के नाम पर जिस प्रकार हमने जंगलों का दोहन किया है, इसी का दुष्परिणाम है कि आज हमें चक्रवात, बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदाओं का अधिक शिकार होना पड़ रहा है। 'कजरी और एक जंगल' ऐसे ही पर्यावरण के चिंता को केन्द्रित करती कहानी है, जिसमें जंगल को देवता माना गया है। एक विश्वास है कि यह जंगल लोगों की हर परिस्थिति में जान बचाता है। कजरी अपने पिता के साथ जंगल के मुहाने पर ही एक झोपड़ी में रहती है। उसे जंगल से बड़ा प्यार है। उसके पिता भी रोज जंगल से सुखी लकड़ियाँ, कुछ फल और फूल लेकर आते हैं। लकड़ियों को बाजार में बेचकर ही उनकी जीविका चलती है। लेकिन इस जंगल पर अवैध व्यापारियों की नजर पड़ गई है, वह जानवरों का शिकार करते हैं, पेड़ों को काटकर तश्करी करते हैं। कजरी इन लोगों को एक बार देखती है और अपने बाबा से कहती है – *बाबा देखों, ये लोग जंगल के पीछे ही पड़े हैं, जब देखो तब ये आते हैं और जानवरों को मार देते हैं और फिर उनकी खाल बेच देते हैं। कभी चोरी से पेट काटकर लकड़ियाँ ले जाते हैं। (भार्गव 45)*

ऐसे अवैध व्यापारियों के चरित्र को कजरी भलीभाँति पहचानती है। वह कहती भी है - '' *बाबा मैने पहले भी इनकी जिप्सी में हिरणों के कटे सिर, बाल और खून को देखा था। ये लोग बहुत ही खतरनाक है, इनमें दया तो बिल्कुल ही नहीं है।'' (भार्गव 45)* आज हमने यूज एन्ड थ्रों के कल्चर को अपना लिया है। प्लास्टिक के विकास ने एक ओर जहाँ हमारे जीवन को आराममय बनाया है, वहीं इसने प्रकृति के पूरे संतुलन को बिगाड़ कर रख दिया है। आज इसके इस्तेमाल पर पाबंदियाँ लगायी जा रही है। प्रकृति का यह सबसे बड़ा दुश्मन बनकर उभरा है। कहानी की कजरी को प्लास्टिक का दुर्गुण पता है। इसलिए जब वह अपने स्कूल के पास चाय की दुकान में पड़े प्लास्टिक के कप और उसके आस-पास मारी पड़ी मधुमक्खियों को देखती है तो तब वह सोचती है कि मधुमक्खियाँ ही है

जो फूलों के परागकण को हर तरफ बिखेर कर नये पौधे के निर्माण में सहायता करती है, अगर सारी मधुमक्खियाँ मारी गई तब तो प्रकृति का सर्वनाश हो जाएगा, वह चाय वाले के पास जाती है और उनसे कहती है –*काका देखो तो इन जूठे कप में हजारों मधुमक्खियाँ मरी पड़ी है, आप इन जूठे कपों को बाहर न फेंककर कहीं अन्दर डालें। वैसे अच्छा तो यही होगा कि आप मिट्टी के कुल्हड़ काम में लें, क्योंकि मिट्टी के कुल्हड़ आसानी से नष्ट किए जा सकते हैं और प्लास्टिक के कप तो नष्ट भी नहीं हो पाते हैं।(भार्गव 46)*

कजरी का गाँव और आस-पास के गाँव जब पूरी तरह तूफ़ान के चपेट में आ जाता है और कई गाँव जलमग्न हो जाता है तो कजरी ऐसे तूफ़ान और बाढ़ का कारण भी मनुष्य को ही मानती है, वह कहती है- पता है बाबा, ये जो लोग रातों रात जंगल और पेड़ काट रहे हैं, यह सब इसी वजह से हो रहा है। तूफ़ान तो पेड़ों के बड़े-बड़े चेहरे से ही डरता है। उसने देखा कि लो अब तो कोई खतरा ही नहीं है, क्योंकि गाँव वालों ने तो मूर्खों की तरह सारे पेड़ काट दिए है, इसीलिए उसे अब कोई नहीं रोक सकेगा। तभी तो तूफ़ान की गर्जना, बारिश और तेज हवाओं के साथ मिलकर फिर इतनी आक्रमक हो जाती है, हम चाह कर भी कुछ नहीं कर पाते हैं। पता नही ये गाँव वाले कब जंगल और पेड़ों की महत्ता को समझेंगे। (भार्गव 46-47)

लोग जंगल तो काट ही रहे हैं, विकास के नाम पर सरकार भी उद्योगों के विकास के लिए जंगलों को काटकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को जमीन मुहैया करा रही है। वह बड़े- बड़े पूँजीपतियों से नये – नये समझौते कर जंगल को कम्पनियों के नाम कर रही है। सेज (SEZ) के नाम पर जंगल और पहाड़ को बर्बाद किया जा रहा है, गाँव के गाँव उजाड़े जा रहे हैं, पेड़ काटे जा रहे हैं| सिमेंट और क्रेसर मशीन लगवाकर पर्यावरण नष्ट किया जा रहा है। 'मुरारी शर्मा' अपनी कहानी 'प्रेतछाया' में ऐसे ही गाँव का चित्रण करते हैं, जहाँ विकास के नाम पर जंगल का दोहन किया जाता है। देवधाम के नाम पर पहाड़ में मंदिर की स्थापना की जाती है और देखते ही देखते मंदिर के आस-पास की भूमि पूँजीपतियों के नाम हो जाती है। विधायक भी इस काम में भरपूर मदद करते हैं- *विधायक के कहने पर इस सड़क को प्रधान मंत्री ग्रामीण सड़क योजना में डाल दिया गया। जंगल में ही आरा मशीनें लगाकर देवदार के पेड़ों को काट-काट कर स्लीपर बनाए गए। सैकड़ों देवदार के स्लीपर गाड़ियों में भरकर रातों-रात गायब कर दिए गए। (शर्मा 47)*

कहानी में देवीराम नाम का प्रकृति प्रेमी है। उसी ने गाँव वालों की मदद से 120 बीघे जमीन में बान, देवदार और काफल के पौधे लगवाये थे। यह जंगल उसका घर है और सारे पेड़ उसके बच्चे। किन्तु, आज जिस तरह से विकास के नाम पर मंदिर ट्रस्ट और पूँजीपति वाले पेड़ों को काट रहे हैं, उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकलती है। -*''उसने बच्चों से भी बढ़कर इन पेड़ों की देखभाल की थी। वह यह कभी बर्दास्त नहीं कर सकता था कि पैसों के लालाच में अंधा पुजारी हरे-भरे पेड़ों को काट डाले।'' (शर्मा 48)* कहानी में जंगल को बचाने की मुहिम चलायी जाती है। पूरे गाँव वाले देवी राम की मदद के लिए आ जाते हैं। विमला इन सबमें लीड रोल निभाती है। वह लोगों से खुले तौर पर चुनौती लेती है। देवी राम विमला से कहता है – *''भगवान तेरा भला करे बेटी... इस जंगल को मैनें बच्चों की तरह पाला है। अपनी आँखों के सामने इन डाल बुटों को उजड़ते कैसे देखूँ....इन पर कुल्हाड़ी चलते मैं नहीं देख सकता।'' (शर्मा 49)* सरकार उस जमीन को सीमेंट फैक्टरी लगाने के लिए अनुबंध कर चुकी है। ठेकेदार को तो बस मुनाफे से मतलब है। मंदिर की आड़ में वे जंगल और पत्थर का सौदा कर रहे हैं। विमला मिटिंग में कहती है – *ठेकेदार ने मंदिर की आड़ में नाले के पास क्रेशर लगा दिया है। मंगतू प्रधान की जेसीबी दिन रात जंगल में तबाही मचा रही है। सोमू कारदार के टिप्परों पर पत्थर शहर में ले जाकर बेचे जा रहे हैं। और विधायक... वो भी बंजर जमीन को सोने के भाव सीमेंट फैक्टरी को देकर करोड़ों कमाना चाहता है। (शर्मा 50)*

सबको पता है कि सीमेंट कारखाना लगता है तो फिर करीब 100 बीघे क्षेत्र में फैले गाँव का उजड़ना तय है, फिर भी कुछ लोग पैसे के लालच में अपनी जमीन बेचने के लिए राजी है। कहानी में पर्यावरणविद अपने भाषण में इसके दुष्परिणाम को बताते हुए लोगों को सचेत करते हुए कहते हैं- दूसरी ओर स्पेशल इकॉनोमिक जोन बनाने की तैयारी की जा रही है... बड़ी- बड़ी कम्पनियों के साथ जल विद्युत परियोजनाएँ और सीमेंट कारखाना लगाने के लिए धराधर एमओयू साईन किये जा रहे हैं। ये सभी कारखाने और परियोजनाएँ इन पहाड़ों के लिए ग्रहण के समान है जो यहाँ की हरियाली को चटकर जाएगी...पहाड़ खोखले हो जायेंगे। (शर्मा 51)

कहानी में गाँव वाले एकत्रित होकर पर्यावरण को बचाने की लड़ाई लड़ते है और कुछ हद तक पेड़ों को काटने से रोक लेते हैं, किन्तु जिसप्रकार इन पूँजीपतियों का साथ सरकार दे रही है, हम अपने पर्यावरण को कहाँ तक बचा पायेंगे, यह तो समय ही बतायेगा। 'जंगल में आतंक' कहानी में तो हरिराण मीणा जंगल की पीड़ा को जंगल की आवाज में ही व्यक्त करते हुए लिखते हैं – *मेरी धरती पर जितनी वनस्पतियाँ है, इसकी सतह पर जितना जल है और इसके गर्भ में जितने भी रस व रत्न है, उन सबका अंधाधुँध दोहन किया जा रहा है। लोकतंत्र के रथ पर सवार सत्ता का जिस विकास का ध्वज उठाए पूँजी के बुल्डोजरों की फौज के साथ मुझे रौंदता हुआ बढ़ा चला आ रहा है और उसके पीछे-पीछे पृथ्वी की सारी सभ्यता एक विशालकाय रोडरोलर की मानिन्द मेरी छाती पर लुढ़क रही है। (मीणा 27)*

प्राकृतिक संतुलन का आधार जंगल है, जंगलों के विनाश के कारण ही कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि देखी जा रही है। भूमंडलीय ताप में वृद्धि का कारण भी जंगलों का नाश होना है। वायु की शुद्धता जंगल पर निर्भर है। किन्तु आज वैज्ञानिक उन्नति एवं जंगल के व्यवसायीकरण ने जंगल का विनाश कर डाला है। कहानी में जंगल इस मानव सभ्यता से बार – बार प्रश्न कर रहा है- *देखो, पूरा - का – पूरा परबत मेरी देह से उखाड़कर लारियों में भरकर कहाँ ले जाया जा रहा है? मेरी धरती के पेट को क्यों चीरा जा रहा है? मेरी अस्थियों के अंदर सुरंग कौन खोदे जा रहा है? वो देखो, दूर से नजदीक आते हुए मेरी काया को रौंदते बुलडोजर, मेरे मस्तिष्क को खोदती मशीनें, मेरी नशों को छेद- छेद कर किए जा रहे विस्फोट। मेरी छाती पर चलती हुई, समूचे बदन को रौंदती-खूँदती-खोदती- खुखेरती मेरा खून पीती हुई बढ़ी चली आ रही यह फौज किन हमलावरों व लुटेरों की है? (मीणा 31)*

हम मानव को जंगल के इस सवाल का जवाब देना होगा। जिस जंगल से हमारा जीवन जुड़ा है आज उस जीवन को ऐशो- आराम देने के लिए हम जिस प्रकार जंगलों का विनाश कर रहे हैं, एक प्रकार से यह हमारा ही विनाश है।[10,11,12]

सूचना क्रांति के युग में चारों तरफ विकिरण का जाल फैला हुआ है। मोबाईल के आने से जहाँ पूरी दुनिया मुट्ठी में आ गई है, वहीं हम पूरी तरह से विकिरण के चपेट में आ गए है। आज मैदान से लेकर ऊँचे पहाड़ियों के घने जंगलों तक मोबाईल टावरों की पहुँच हो चुकी है। विकिरण के कारण जहां हम कई बिमारियों की चपेट में आ रहे है, वहीं कई जीवों का जीवन भी नष्ट हो चुका है। एस. आर. हारनोट की कहानी 'भागादेवी का चाय घर' वैश्वीकरण के उपरान्त फैले कम्पनियों के मायाजाल से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट की कहानी है। कहानी कम्पनी के आने से नदी, झरने, जंगल के विनाश के साथ – साथ मोबाईल टावर के लगने से फैलने वाले विकिरण के दुष्प्रभाव को बयां करती है। कहानी में भागादेवी कम्पनी वालों का प्रतिरोध करती है। वह इस बात पर जोर देती है कि मनुष्य की रक्षा के लिए हर पशु-पक्षी का जिन्दा रहना जरूरी है। जंगल का बचा रहना जरूरी है। लेखक कहता है- *जंगल का बचे रहना जरूरी है। बुरांश का खिले रहना जरूरी है। मोरों का नाचना जरूरी है। बर्फ का गिरना जरूरी है। देवदारूओं का जिन्दा रहना जरूरी है। कितनी सारी जरूरते हैं जिन्हें भागा बचाये रखना चाहती है। ये बचाव आज के क्रूर और हत्यारे होते समय से है। (हारनोट 17)*

भागा देखती है कि अब कम्पनी वालों की नजर पहाड़ों पर है। वह पूरे पहाड़ पर टावर बिछाना चाहते हैं। अपने उत्पाद का विस्तार चाहते हैं। इन टावरों के विकिरण से उसके सर पर दर्द होता है। उसे महसूस होता है जैसे कुछ अदृश्य विकिरणें उस पर आक्रमण कर रही है। कम्पनी वाले भागा के शरीर पर विज्ञापन लगवाना चाहते हैं। शरीर पर छपे हर हिस्से के विज्ञापन की अलग – अलग कीमत लगाते हैं। भागा का पति भी कम्पनी की बातों में आ जाता है। अपने शरीर को विज्ञापन के लिए बेचे जाते देख भागा बाघिन बन जाती है। लेखक लिखते हैं- भागा अपने पति की आँखों में झांकती है। वे गहरे उन्माद, जुनून और मद से भरी हुई है। पुतलियों पर उसे कम्पनी के लोग नाचते दिख रहे हैं। वे भयंकर असुरी मुखौटा पहने हुए तांडव कर रहे हैं। वे सभी को भूमंडलीय बाजारी पैरों तले रौंदते हुए उन विशाल टावरों में लगी उल्टी छतरियों में पसर रहे हैं। (हारनोट 25)

वह पति को चांटा मारती है और पूरे कम्पनी वालों का विरोध करती है। लेकिन सच तो यह है कि आज हर कोई बाजारवाद के पीछे भाग रहा है। पैसे के लालच में अपनी जमीन और घर के छतों को कम्पनी के हवाले कर देते हैं। इसकी उन्हें मोटी कीमत भी मिलती है।[13,14]

निष्कर्ष

आज अपने भोग एव सुख की प्राप्ति के लिए हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, इसका खामियाजा हमें तो भुगतना पड़ेगा ही, हमारी भावी पीढ़ी इससे और ज्यादा नुकसान झेलेगी। प्रकृति अपना बदली जरूर लेगी। आज असमय बारिस, बाढ़, भूकम्प, सुनामी केवल प्राकृतिक घटना न होकर मनुष्य सभ्यता के लिए भारी चेतावनी है। अगर आज भी हम नहीं सुधरे तो हमें भविष्य में अपना सब कुछ खोने के लिए तैयार रहना होगा। आज के कुछ रचनाकार अपने इस दायित्व को समझ रहे हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से पर्यावरण चिंता को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, किन्तु सच तो यह है कि अभी भी पर्यावरणीय समस्या केवल समस्या बनी हुई है, विमर्श का रूप नहीं ले पाया है। अतः जरूरत है कि पर्यावरणीय विमर्श पर अधिक से अधिक रचनाएँ आए ताकि सामाजिक क्रांति लाई जा सके। [15]

संदर्भ

[1] हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुटज(निबंध) ,पृ.सं.-32

[2] समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श , सम्पादक-डॉ.ए.ऐस.सुमेष, पृष्ठ सं.-28

[3] समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श , सम्पादक-डॉ.ए.ऐस.सुमेष, पृष्ठ सं.-21

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 4, April 2024 |

[4] पत्रिका-प्रगतिशील वसुधा, अप्रैल जून-2008 ,पृ.सं.-104
[5] ‘वृक्ष ने कहा’, मेहता नगेन्द्र सिंह ,पृ.सं.-7
[6] . धरती की पाती , वही,पृ.सं.-28
[7] पानी, वही ,पृ.सं.-48
[8] हज़ारी प्रसाद मंडली- पाठावली हज़ारीप्रसाद रचना 'कुटज' अंक-09 राजकमल प्रकाशन प्रकाशन। 32
[9] कामायनी - जयशंकर प्रसाद-चतुर्थ संस्करण- 2013, प्रश्न 02
[10] श्रद्धा सर्ग - चतुर्थ संस्करण
[11] 'रही दिशा इसी पार'-संजीव राजकमल प्रकाशन 2015
[12] एंजेल्स फ्रेडरिक, 'डायलेक्टिक्स ऑफ नेचर', समयांतराल, फरवरी- 2012
[13] 'करंग घोड़ा नीलकंठ हुआ' -महुआ माजी, राजकमल प्रकाशन 2012
[14] समकालीन भारतीय साहित्य -प्रोफेसर राम, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ- 11
[15] हार नोट, एस.एस. 'एक नदी तोलती है', प्रथम अंक -122, जून-जुलाई, 2020

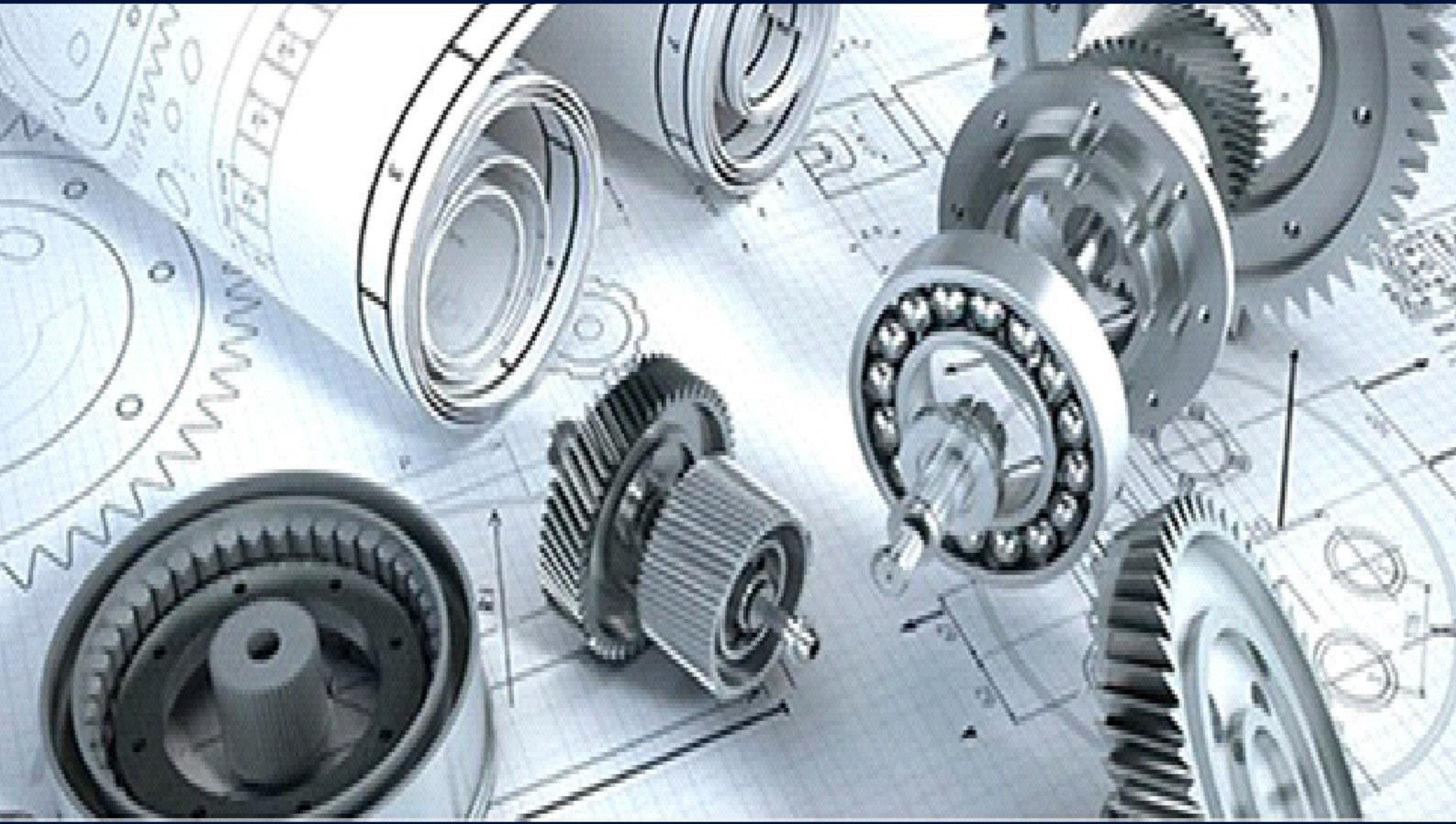

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर
NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com